समकालीन हिन्दी साहित्य विमर्श

मुख्य संपादक

प्रो. (डॉ.) एस.आर [illegible]श्री

सहायक संपादक

डॉ. जयकुमारी के.

डॉ. गायत्री एन.

डॉ. दीपक के. आर

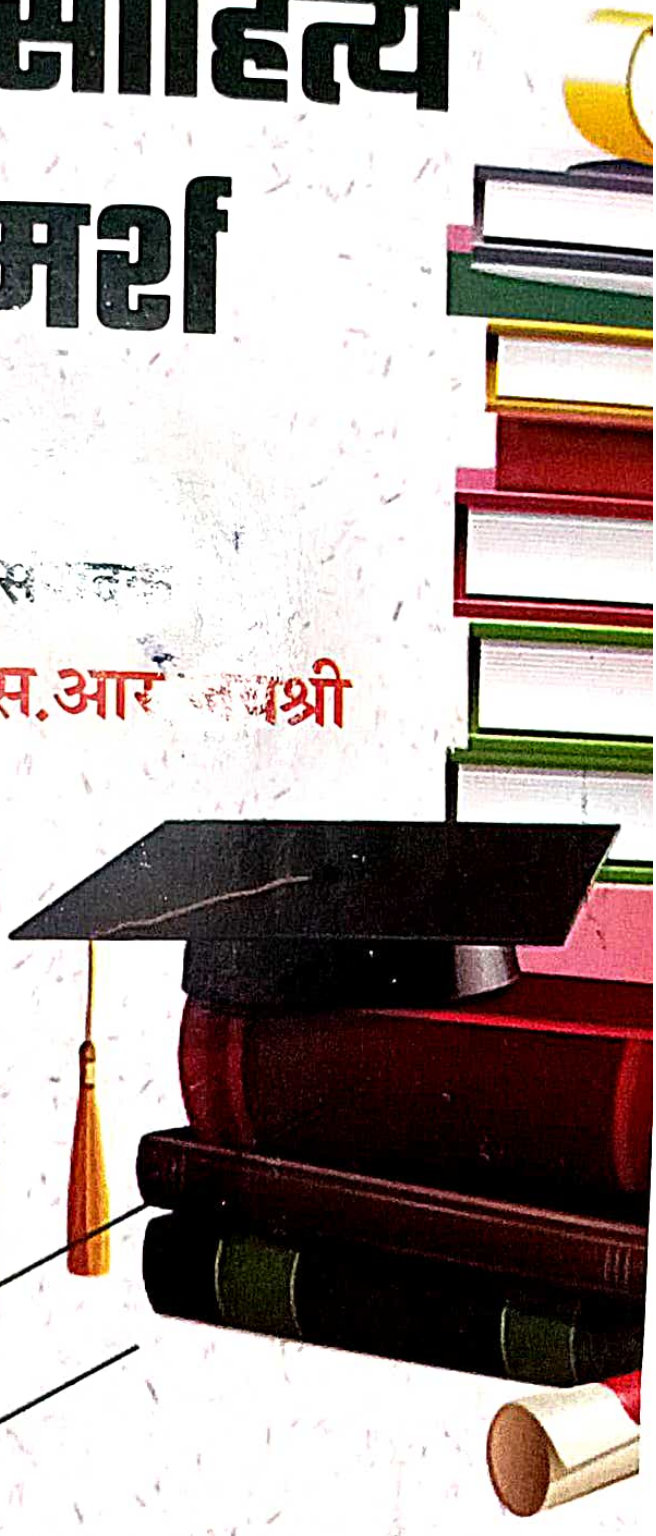

I.S.B.N. : 978-93-90265-20-6

पुस्तक : समकालीन हिन्दी साहित्य विमर्श

मुख्य सम्पादक : डॉ. एस. आर. जयश्री

सहायक सम्पादक : डॉ. जयकुमारी के., डॉ. गायत्री एन. एवं डॉ. दीपक के. आर.

प्रकाशक : अमन प्रकाशन
104A/80C रामबाग, कानपुर-208 012(उ.प्र.)
मो. : 9044344050, 8960421760
ऑफिस. 0512-3590496

संस्करण : प्रथम, सन् 2020

मूल्य : ₹ 120.00 मात्र

सर्वाधिकार : अध्ययन मण्डल

मुद्रक : आर.बी. आफॅसेट, नौबस्ता, कानपुर

शब्द सज्जा : अम्बुज ग्राफिक्स, आर.के. नगर, कानपुर

SAMKALEEN HINDI SAHITYA VIMARSH
Price : Rs. One Hundred Twenty Only

डॉ. विश्वासी

भूमिका

वर्तमान समय और समाज विभिन्न प्रकार की चुनौतियों तथा उनके प्रतिरोधों से गुजर रहे हैं। समकालीन हिन्दी साहित्य अपने सामाजिक सरोकारों के ऐतिहासिक सन्दर्भों को सरल-सीधे ढंग से अभिव्यक्त करते हुए अपनी सामाजिक पहचान का साक्ष्य प्रस्तुत कर रहा है। समकालीन साहित्य में उभरे विमर्शों का अध्ययन इस दृष्टि से करना संगत रहेगा।

केरल विश्वविद्यालय के स्नातकीय स्तर के पाठ्यक्रम के लिए तैयार की गयी इस पुस्तक में विभिन्न विद्वानों एवं विदुषियों के प्रौढ़ आलेख समाहित हैं। इसमें कथा साहित्य, कविता तथा अन्य गद्य विधाओं को विमर्श की दृष्टि से देखा-परखा गया है। छात्रों को साहित्यिक विमर्श की अवधारणाओं एवं स्वरूपों से अवगत कराने में ये अवश्य सहायक सिद्ध होंगे, यही हमारा विश्वास है।

- संपादक

4.
आदिवासी विमर्श

आदिवासी उन निवासियों को कहा जाता है, जो किसी देश या प्रान्त में बहुत पहले से रहते आए हों अर्थात् आदिम निवासी, वे सरल, निश्छल, आडम्बरहीन होते हैं। भारत के सन्दर्भ में रामायण, महाभारत काल से वे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आये हैं। भारत की जनसंख्या में लगभग 10 प्रतिशत आबादी आदिवासियों की है। इनकी अपनी एक अलग पहचान है, जो उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं की विशेषताओं पर आधारित है। कई विद्वानों ने आदिवासी को परिभाषित करने की कोशिश की है। महात्मा गांधी ने जनजातियों को 'गिरिजन' कहा तो कुछ लोग उन्हें 'वनवासी' कहते हैं, लेकिन आदिवासी समुदाय इन दोनों (संज्ञाओं) को स्वीकार नहीं करते हैं, वे 'आदिवासी' कहलाना पसन्द करते हैं, क्योंकि ये दोनों संज्ञाएँ उनके मूलवासी होने की धारणा को खण्डित करती हैं, और उनके मन में शंका उत्पन्न करती हैं।

अंग्रेजी में ट्राइब के अलावा जिन शब्दों को लगभग समान अर्थों में आदिवासी समुदायों के लिए प्रयोग किए जाते हैं, उनमें इडिजिनस, एबोर्जिनल, प्रिमिटिव, नेटिव, बैड नैव, सेवेज आदि प्रमुख हैं। अनुसूचित जनजाति अर्थात् शेड्यूल ट्राइब्स या एस. टी. यह शब्द उन जन समुदायों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जिन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 के अधीन अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट किया गया है। यह एक प्रशासनिक शब्द है, लेकिन जनसामान्य के बीच अनुसूचित जनजातियों के लिए आदिवासी शब्द बहुप्रचलित है। समाजशास्त्रीय और मानवशास्त्रियों ने जनजातियों की लगभग एक जैसी परिभाषा दी है। गिलिन एवं गिलिन के अनुसार - "जनजाति किसी भी ऐसे स्थानीय समुदायों को कहा जाता है, जो कि एक सामान्य भूभाग पर निवास करता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति का व्यवहार करता हो।" वर्तमान स्थिति में आदिवासी शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट भाषा बोलने वाले, विशिष्ट जीवन शैली, जंगल-पहाड़ों में जीवन यापन करने वाले मानव समुदाय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

आदिवासी स्वावलम्बी और स्वाभिमानी होते हैं। भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक

संरचना में आदिवासियों ने न केवल अपना योगदान दिया अपितु मातृभूमि की रक्षा में सर्वस्व बलिदान किया। भारत में अंग्रेजी हुकूमत और अनेक-शोषण, दमन का विरोध करते हुए मातृभूमि को दासता से मुक्तकरने के लिए आदिवासियों ने ही सर्वप्रथम अंग्रेजों से लोहा लिया। बाबूरावसेडमाके, बिरसा मुण्डा, सिद्धों, कान्हू, तटया भील, उमेड़ बसावा, शंकरशाह रघुनाथ आदि सभी वीर आदिवासी थे। उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत और शोषण-दमन के खिलाफ विद्रोह किया पर सत्य यही है कि प्रत्येक काल में उनके विद्रोह को निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया। आदिवासी विद्रोह की एक परम्परा रही है। झारखण्ड में आदिवासी विद्रोह व्यापक स्तर पर हुए हैं, पहाड़ियों के विद्रोह (1766), ढाल विद्रोह (1773), तिलका मांझी का विद्रोह (1784), चुआड़ विद्रोह (1769), तमाड़ विद्रोह (1819-20), लरका विद्रोह (1821), कोल विद्रोह (1831-32), भूमिज विद्रोह (1832-33), सरदार आंदोलन (1860-95), बिरसा मुण्डा का उलगुलान (1895-1900), ताना भगत आंदोलन (1914), झारखण्ड आंदोलन (1920-2000), भील विद्रोह (1881), बस्तर क्रांति भूमकाल (1910), भील आंदोलन धुमाल (1913), भील गरासिया 'एकी' आंदोलन (1922), नागा संघर्ष - जेलियांगरांग आंदोलन (1932), वारली संघर्ष (1945-48) भारत के प्रमुख आदिवासी विद्रोह हैं।

आदिवासी प्राचीन काल से आज तक छल-कपट, उपेक्षा, शोषण, तिरस्कार और अपमान के शिकार होते रहे हैं यही कारण है कि तथाकथित सभ्य समाज के लोगों पर ये सहज ही विश्वास नहीं कर पाते। आदिवासियों का अतीत उथल-पुथल से भरा है। आक्रमणों, विरोध, हार-जीत, विस्थापन, पलायन आदि बातें पुस्तकों में भले ही न मिले पर लोकगीतों, लोक कथाओं, में मौखिक परम्परा के रूप में आज भी मिल जाते हैं, लेकिन अब लोक साहित्य भी विलुप्त हो रहा है, यदि समय रहते इन्हें संकलित, संरक्षित नहीं किया गया तो यह निश्चित ही खत्म हो जाएगा, संसार की अनेक आदिवासी समुदाय की बोलियाँ ऐसे ही खत्म हो गई।

आदिवासियों के शोषण, दमन, उत्पीड़न, अधिकार, हनन, अपमान, आदिवासी अस्मिता पर मंडराते खतरे जैसे कारणों से आदिवासी विमर्श की शुरूआत हुई। इसकी संवेदना और वैचारिकी कंटकाकीर्ण रास्तों पर आगे बढ़ती हुई सकारात्मक और विस्तृत भावभूमि हासिल कर रही है।

विस्थापन, आदिवासियों की मूल समस्या रही है। आर्यों के आगमन से लेकर आज तक वे विस्थापित ही होते रहे हैं, विकास के नाम पर आदिवासी सर्वाधिक विस्थापित हो रहे हैं। कोई भी मानव समुदाय अपने पूर्वजों की भूमि आसानी से नहीं छोड़ना चाहता। उस भूमि से उसका भावात्मक लगाव होता है, तिनका-तिनका जोड़कर जिस गृहस्थी को बनाया है, उसे कोई आसानी से कैसे छोड़ सकता है, विस्थापन के बाद उचित मुआवजा न मिलना उनकी तकलीफ और बढ़ा देता है।

आदिवासी साहित्य लेखन में उनका अपना इतिहास बखूबी अभिव्यक्त हो रहा

है, चाहे साहित्य की कोई भी विधा हो आदिवासियों के इतिहास को लक्षित किया जा सकता है। उनकी बोलियों के लोक साहित्य में वह अअधिक गहराई से व्यक्त हो रहा है।

आदिवासी संस्कृति

वास्तव में आदिवासी उदात्त उदार तथा स्वावलम्बी होते हैं। वे अपने समूह से जुड़े रहते हैं। प्रकृति का साथी बनकर जीना उनकी शैली और स्वभाव रहा है। वे प्रकृति से संवाद करते हैं, उसके प्रकोप को सहते हैं, परन्तु उसे नियंत्रित करने की कोशिश नहीकरते। इनका जीवन जल-जंगल, जमीन से घिरा रहता है। वे अकेले नहीं, समूह में रहते हैं।

आदिवासी अधिक कलात्मक जीवन जीते हैं। वे लय, ताल, स्वर में पारंगत होते हैं। उनका मानस सौंदर्य पर रीझता है। मिट्टी के रंग से दीवारों के फलक पर उनकी अँगुलियाँ चित्र उतारती हैं। गोदना उनकी पारंपरिक कला का परिचायक है, छत्तीसगढ़ की बैगा आदिवासियों की गोदना कला विश्वविख्यात है। आदिवासी गोदना को श्रृंगार के साथ धार्मिक विश्वास के रूप में स्वीकारते हैं जोमरने के बाद उनके साथ स्वर्ग तक साथ जाता है।

आदिवासी संस्कृति के अन्तर्गत भाषा, बोली, अंधविश्वास, रहन-सहन, गोत्र, परिवार, जाति-व्यवस्था, विवाह-प्रथा, पंचायत, वेशभूषा, आभूषण, त्यौहार, उत्सव, संस्कार, मनोरंजन, नृत्य, गीत, वाद्य इत्यादि सांस्कृतिक बिन्दु समाविष्ट हैं।

जंगल के साथ उनका जीवनदर्शन जुड़ा हुआ है। यह दर्शन, प्रकृति के साथ जीने की कला है। सदियों से प्रकृति के बीच रहते हुए आदिवासी इस कला को बखूबी जानते हैं। इसलिए उन्होंने प्रकृति से हमेशा कृतज्ञता का सम्बन्ध रखा। यानी जरूरत के हिसाब से वे जितना प्रकृति से लेते हैं, उपकारस्वरूप उसकी सेवा करते हैं और बाद में सब कुछ उसे लौटा देते हैं, आदिवासियों के इसी गुण का परिणाम है 'झूम खेती'। झूमखेती का मतलब है, खेती करने के बाद उक्त जमीन को तीन-चार साल तक के लिए छोड़ देना, ताकि वहाँ जंगल फिर से आबाद हो सके। प्रकृति के प्रति यह कृतज्ञता ही आदिवासी समाज को सहजीवी बनाती है और उसकी रक्षा करना, आदिवासी समाज अपना कर्त्तव्य समझता है।

जंगल के साथ आदिवासी समाज का धार्मिक-सांस्कृतिक विश्वास और सामुदायिक व्यवस्था और अर्थव्यवस्था जुड़ी हुई है। उनका पूजा स्थल 'सरना' 'साल' वृक्षों का समूह होता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी संस्कारों में साल की पत्तियाँ उपयोग में लाते हैं। इसी विश्वास के कारण आदिवासियों ने 'साल' का प्रतीकात्मक उपयोग वे युद्ध के समय खुद को संगठित करने के लिए किया। युद्ध के समय संगठित होने के लिए एक गाँव से दूसरे गाँव साल की टहनी भेजी जाती थी। यह टहनी उनकी एकता की प्रतीक थी।

उन्होंने सामूहिक रूप से जंगल को साफ कर खेत और गाँव बसाए तथा 'खूँटकट्टी' भूमि व्यवस्था विकसित की। यह 'खूँटकट्टी' व्यवस्था एक तरह की क्षेत्रीय व्यवस्था होती थी, जिसकी अपनी निश्चित सीमा थी। इस सीमा में आदिवासियों का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व था।

लोकतान्त्रिक जीवन पद्धति

आदिवासी समाज की जीवन पद्धति लोकतान्त्रिक है। यह एक समतामूलक समाज है, समता की यह अवधारणा स्त्री-पुरुषके सम्बन्धों में भी मौजूद है, स्त्री, पुरुषों के समान कहीं भी आ जा सकती हैं। मुख्यधारा की तरह उन पर सामाजिक प्रतिबंध नहीं है। श्रम का लैंगिक विभाजन आदिवासी समाज में नहीं है। आर्थिक निर्भरता आदिवासी स्त्रियों को स्वावलंबी बनाती है, आदिवासी समाज मेंश्रम का महत्व है, वे मेहनत करने में विश्वास करते हैं। आदिवासी समुदाय में लिंगभेद की बुराई नहीं दिखाई देती, यही कारण है कि भ्रूण हत्या जैसे सामाजिक अपराध नहीं होते, तात्कालिक शोध के अनुसार आदिवासियों की 08 जातियों, संथाल हो, उराँव, खड़िया, मुण्डा, सौरिया पहाड़िया, माल पहाड़िया और बंजारा में महिलाओं की संख्या अधिक है। आदिवासी समाज में स्त्री-पुरुष समान रूप से भागीदारी निभाते हैं चाहे वह कृषि संबंधी कार्य हो या दूसरे अन्य कार्य जैसे स्त्री-पुरुष दोनों का मिलकर गायन या नृत्य करना। समाज, शिक्षा का अधिकार दोनों को समग्र रूप से प्रदान करता है। आदिवासी समुदाय में दहेज जैसी सामाजिक बुराई नहीं पाई जाती है, वर पक्ष से वधू पक्ष को कन्या मूल्य दिया जाता है, जो मामूली रकम होती है, हजार रुपये से भी कम।

आदिवासी समुदाय में 'गणचिन्ह' या 'टोटम' प्रथा बहुत महत्वपूर्ण होती है, टोटम किसी आदिवासी समाज के उस विश्वास को कहते हैं जिसमें मनुष्य का किसी पेड़-पौधे या प्रकृति के अन्य तत्वों से सम्बन्ध माना जाए। टोटम शब्द ओजिम्बे नामक मूल अमेरिकी कबीले की भाषा के 'ओतोतेमन' से लिया गया है, जिसका अर्थ अपना भाई-बहन/रिश्तेदार हैं। आदिवासियों में एक ही टोटम में विवाह संबंध वर्जित होते हैं। क्योंकि वे आपस में भाई-बहन का रिश्ता मानते हैं। एक टोटम को मानने वाले का उस टोटम से अलौकिक, रहस्यमय संबंध माना जाता है और अगर वह टोटम कोई पशु पक्षी है तो उसे मारना या हानि पहुँचाना वर्जित होता है।

आदिवासियों में सामाजिक-सांस्कृतिक संस्कार हेतु 'युवागृह' होते हैं जहाँ वे अपने पसंद का जीवन साथी चुनते हैं, उराँव आदिवासियों में 'धुमकुरिया' और बस्तर के गोंड़ आदिवासियों में 'गोटुल' जैसी उदात्त सांस्कृतिक जीवन के उदाहरण है, इस दृष्टि से आदिवासी समाज की सोच तथाकथित सभ्य समाज की सोच से कहीं ज्यादा आधुनिक रही है। सभ्य समाज आधुनिक युग में युवक-युवती परिचय सम्मेलन कराता है जबकि आदिवासी समुदाय में यह व्यवस्था पहले से रही है।

आदिवासी विमर्श

विमर्श शब्द का अर्थ है विचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, तर्क, चर्चा आदि। आदिवासियों के सबध में जो विचार गम्भीरता से, रचनाकार अपनी रचना में व्यक्त करते है, वही विमर्श के नाम जाना जा रहा है। जब किसी साहित्यकृति का आदिवासी विमर्श की दृष्टि से विश्लेषण करना होता है तो लेखन की प्रवृत्तियों की ओर ध्यान देना जरूरी हो जाता है। वह लेखन प्रकृतिवादी है, मनोरंजनपरक है या विश्लेषणात्मक है, उसे देखना पड़ता है। लोकसाहित्य के रूप में आदिवासी साहित्य विपुल है, असीम है और मूल्यों से भरा है। परन्तु वह बोली मे है। उनकी बोलियाँ द्राविड, आस्ट्रिक, तिब्बती और बर्मी परिवारों की है, परन्तु उनके पास लिपि नहीं है। प्राचीन काल में उराँव आदिवासियों की बोली 'कुडुख' की 'तोलोंगसिकि' लिपि थी जो बाद में लुप्त हो गई लेकिन वर्तमान मे उसे पुनः स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि भारतीय संदर्भो में आदिवासी बोलियों की लिपियों पर विचार हो रहा है।

आदिवासी समाज की मूल बातें हैं, आर्थिक व सामाजिक जीवन, मौखिक साहित्य परम्परा, जीवनशैली, इतिहास व परम्परा, बाहरी दुनिया से अन्तर्सम्बन्ध, विकास की दशा व दिशा, भविष्य की चुनौतियाँ, स्त्री-पुरुष संबंध, शोषण के विभिन्न रूप एवं उसके विरुद्ध प्रतिरोध एवं संघर्ष, कलात्मक अभिव्यक्ति, परम्परागत अनुभवजन्य बहुआयामी ज्ञान, प्रकृति से सान्निध्य के संबंध में विमर्श आवश्यक हैं। उसके लिए निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना जरूरी है –

1. आंचलिक, दलित साहित्य से आदिवासी साहित्य भिन्न है।
2. आदिवासियों की समस्याओं का चित्रण मात्र आदिवासी विमर्श नहीं है।
3. विमर्श में आदिवासी जीवन-पद्धति, उनकी समूह नीति, विवाह-उत्साह-त्योहार, कला, लोकसाहित्य आदि का समावेश हो।
4. उनकी समस्याओं के साथ, समाधान के संकेत भी जरूरी है।

सरकार एवं गैर-सरकारी संगठनों द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में जो काम हो रहे हैं, उनसे आया परिवर्तन भी इसमें अपेक्षित है। आदिवासी विमर्श मुख्यधारा की भाषाओं के साथ आदिवासी भाषा साहित्य में भी दिखाई दे रहा है लेकिन चिंता का विषय है कि आदिवासी भाषा का लिखित साहित्य पर्याप्त नहीं है, पर वाचिक परम्परा का साहित्य लोक साहित्य के रूप में बड़े पैमाने पर विद्यमान है, जिसमें आदिवासी विमर्श है। लेकिन यदि इसे लिखित रूप में परिणत नहीं किया गया तो ये धीरे-धीरे विलुप्त हो जाएगा। इस बात की भी आशंका है।

आदिवासी साहित्य और आदिवासी विमर्श मूलतः लोकजीवन, लोकसाहित्य, लोक संस्कृति, पर्यावरण और प्रकृति का विमर्श है। आदिवासी साहित्य के इस आन्तरिक और प्राकृतिक स्वर को समय रहते ही समझा जाना चाहिए क्योंकि इसका

स्वर हमारी भाषाओं के दलित-विमर्श से भी आगे का है। जहाँ दलितों को गाँव के बाद हिन्दु संस्कृति से बहिष्कृत कर, उसके अधीन रहकर उसे मानने पर मजबूर किया गया था, उसका आत्मसम्मान छीन लिया गया, वहीं आदिवासियों को तो सभ्यता से भी बहिष्कृत कर जंगलों में ठेल दिया गया। इन सबके बावजूद उन्होंने अपनी संस्कृति के विरासत को हमेशा कायम रखा और वह आत्मसम्मान के साथ जीता रहे, लेकिन अब उनकी सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना और स्वायत्तता पर भी खतरा पैदा हो गया है। आजाद भारत में विगत 60-65 सालों में आदिवासी विकास पर लाखों करोड़ों रुपये खर्च किये गये, लेकिन बड़े दुःख की बात है कि उसका सही लाभार्थी आदिवासी समाज नहीं है। आज पढ़े-लिखे आदिवासी युवा लेखक अपने जीवन संघर्ष और जिजीविषा को अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे हैं। क्योंकि मुख्य धारा के समाज ने आदिवासी समाज को न विकसित होने दिया और न ही अपने समाहित होने दिया। आदिवासी को एक जंगली मनुष्य के फ्रेम में गढ़ दिया गया, जो कि अधिक संवेदनशील, अधिक कलात्मक, उदार, सरल और सहनशील होते हैं। आदिवासी विपरीत परिस्थितियों में जीते हैं, प्रकृति की आपदा को सहते हैं, पर प्रकृति को नष्ट नहीं करते, उनको संरक्षित करते हैं। जब उनके जीवन जीने के संसाधनों को छीना गया, तब वे इस षड्यंत्र को समझकर, उससे निपटने के लिए जागृत हुए। परन्तु विडंबना है कि इतिहास में भी उसकी उपेक्षा हुई। अब उन्होंने उस धारा के विपरीत जाकर ही अपने इतिहास की खोज शुरू कर दी है, यही आदिवासी विमर्श है।

इस सन्दर्भ में आदिवासी विमर्श की समर्थक रमणिका गुप्ता का कहना है कि इस चेतना के साथ ही लोकसाहित्य की समृद्ध परम्परा को स्रोत बनाते हुए आदिवासियों ने समकालीन साहित्य की शुरुआत की। पाँच हजार वर्षों का विवाद इतिहास है उनके पास। लोकगीतों, लोककथाओं, लिजिद्रियों वीरगाथाओं, पर्वों, त्योहारों के गीतों और अनुष्ठानों की महान परम्परा है, जिसमें उनकी ही नहीं, बल्कि पृथ्वी का इतिहास छिपा है। वे अब खोज रहे हैं अपना इतिहास। महाराष्ट्र के युवा कवि भुजंग मेश्राम का कहना है कि अपने उपनिवेशवाद के संक्रमण से ही ज्योतिबा फूले, बाबा साहेब अम्बेडकर, बिरसा मुंडा जैसे महत्वपूर्ण विचारक पैदा होने के कारण, इन अविकसित समूहों के हितार्थ साहित्य रचा जाने लगा और समूहों की प्रगति का मार्ग मानव मुक्ति का मार्ग बन गया। दलित, आदिवासियों के अनगिनत आन्दोलनों से अनेक सृजनशील लेखक एवं विचारक पैदा हुए। वे और साहित्य आन्दोलन का बायप्रोडक्ट बन गया।

वर्तमान में आदिवासी साहित्य के क्षेत्र में कविता ही सबसे समृद्ध विधा है। प्रमुख साहित्यकारों में अनुज लुंगुन, निर्मला पुतुल, जसिंता केरकेट्टा, जयपाल सिंह मुंडा, रोज केरकेट्टा, तेमसुला आओ, वाल्टर भेंगरा 'तरुण', हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, पीटर पॉल एक्का, वाहरू सोनवणे, केदार प्रसाद मीणा, जोराम यालम नाबाम, जसुता बीनी, मोर्जुम लोई, सुषमा असूर, वंदना टेटे, ग्लैडसन डुंगडुंग, गंगा सहाय मीणा,

अन्ना माधुरी तिर्की, उषा किरण आत्राम, विनायक तुका राम, धामुलाल राठवा, उल्लेखनीय है।

आदिवासी साहित्य, एक अलग तरह का सौंदर्य रच रहा है, उसके सौंदर्य का मानक मुख्यधारा से भिन्न है। अज्ञेय ने भी अपनी नायिका को चंद्रमा या हिरणी सी नहीं 'कत्तगो बाजरे की' कहा था, फिर आदिवासी साहित्य तो एक अलग मिजाज का साहित्य है, अत: उनका सौंदर्यशास्त्र भी अलग है। मुख्यधारा के भाषा साहित्य का सौंदर्यशास्त्र आनंद पर आधारित है, तो आदिवासी साहित्य नैसर्गिकता, पारदर्शिता, आडंबरहीनता और निश्छलता जैसे मानकों पर आधारित है।

आदिवासी, विश्व का ऐसा मानव समुदाय है जिन्हें अपने पूर्वजों से समृद्ध, सांस्कृतिक परम्परा प्राप्त है, वे 'जियो और जीने दो' जैसे विचारों के वाहक हैं। इजरायल के चर्चित इतिहासकार और दार्शनिक युवाल नोवा हरारी के अनुसार - ''जंगल में रहने वाले लोग, खासकर आदिवासी, किसी भी विकसित समाज के लोगों से अधिक, सच के करीब हैं, क्योंकि वे अपनी पाँचों इन्द्रियों का इस्तेमाल सच को जानने के लिए करते हैं, मसलन वे अपने जंगल को जहाँ वे रहते हैं, जानते हैं उसे छू सकते हैं, देख सकते हैं। जिसे वे देख नहीं सकते, उस पर विश्वास नहीं करते।'' सहजीविता, धारणीय विकास में विश्वास करने वाले आदिवासियों की जीवन विधि, पूरे विश्व के लिए अनुकरणीय है। यदि लोग आदिवासियों जैसा संयमित और संतोषी जीवन जी सके तो पृथ्वी दीर्घजीवी होगी और मानवता बची रहेगी।

डॉ. विश्वासी एक्का
सहायक प्राध्यापक - हिन्दी
शासकीय राजमोहनी देवी कन्या स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, अम्बिकापुर, सरगुजा (छ.ग.)

●

दुलायचंद्र मुंडा

कवि-परिचय : मुंडारी के प्रमुख लोकप्रिय परंपरागत कवि-गीतकारों में से एक। अ-गेय गद्यात्मक दुनिया से मुठभेड़ करनेवाले मुंडा आदिवासियों-कांडेसिंह मुंडा, सुलेमान बडिंग, रामदयाल मुंडा के साथ की पहली पीढ़ी के सशक्त रचनाकार। बूंटी के बारुडीह गाँव में 10 अक्तूबर, 1941 को जन्म। माँ पालो और पिता रामसिंह मुंडा। दो भाई और दो बहनों में माता-पिता की तीसरी संतान। शिक्षकों के आंदोलन में जेल भरो अभियान के दौरान 7 जून, 1982 को जब हजारीबाग से लौट रहे थे, तबीयत बिगड़ी और घर पहुँचकर निधन हो गया। उनकी आरंभिक शिक्षा बुरजू स्कूल और एस.एस. हाई स्कूल बूंटी से हुई थी। इसके बाद राँची विश्वविद्यालय से मानवशास्त्र में एम.ए. किया और जे.एन. कॉलेज, धुर्वा (राँची) में 1976 से प्राध्यापक रहे। एम.ए. के दौरान ही उनकी शादी नवीं में पढ़ रही प्यारी टूटी से 7. जुलाई, 1968 को हो गई थी। दोनों के चार बच्चे हुए, तीन लड़कियाँ और एक लड़का। इनका पहला मुंडारी काव्य-संग्रह सुड़ा-सगनश (नव पल्लव) 1966 में और दूसरा संग्रह श्वम्वरूश (मशाल) 1978 में प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त कई पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों में इनकी कविताएँ संकलित हैं तथा आकाशवाणी, राँची से अनेक गीतों के प्रसारण हुए हैं। इनके गीतों में मिट्टी की वही गंध, जंगलों की वही हरियाली और झरनों का वही संगीत और आदिवासियत विद्यमान है, जो सदा से मुंडा एवं आदिवासी गीतों की विशेषता रही है। विषयवस्तु और शिल्प दोनों पक्षों में ये अपनी परंपरा के अत्यंत निकट हैं। वे ही उपमान, वे ही प्रतीक, पंक्तियों की वही पुनरावृत्ति, वे ही छंद, जिन्होंने सारी मुंडा कविता का श्रृंगार किया है, इनकी कविताओं में हैं।

अंप्र
अमन प्रकाशन
104-ए/80 सी, रामबाग, कानपुर-208012 (उ.प्र.)
मोबाइल नं. : 8090453647, 9839218516
फोन : 0512-3590496
ईमेल : amanprakashanknp@gmail.com
वेबसाइट : www.amanprakashan.com
₹ 120/-
ISBN : 978-93-90265-20-6
9 789390 265206